मनुष्य ही अपने भाग्य का निर्माता है।

—:o:—

अनुवादक

[illegible]राम श्रीवास्तव एम० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग।

[illegible]वाँ संस्करण] अक्टूबर–१९६० [मूल्य ६२ न० पै०

प्रकाशक
श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक
सरयू प्रसाद पांडेय
नागरी प्रेस, दारागंज
प्रयाग।

परिचय

जेम्स एलेन और उनकी धर्मपत्नी ने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं जो नवयुवकों के जीवन को बनाने वाली और उनमें एक नवीन उत्साह उत्पन्न करने वाली हैं। रसास्वादन वे ही सज्जन कर सकते हैं जो उनको पढ़ते हैं।

हाल में हमने उनकी दो पुस्तकों को हिन्दी में प्रकाशित किया है, जिनके नाम हैं 'मन की अपार शक्ति' और 'विचारों का प्रभाव'। प्रस्तुत पुस्तक—"मनुष्य ही अपने भाग्य का निर्माता है" तीसरी पुस्तक प्रकाशित की जा रही है।

इसके अनुवादक हैं हमारे परम मित्र बा० राधेश्याम जी श्रीवास्तव M. A., LL. B. ये अत्यन्त उदार, ईश्वरभक्त, सदाचारी और लोकसेवी सज्जन हैं। उनका अधिक समय परोपकार और ईश्वरभक्ति ही में व्यतीत होता है। बहुत ही ललित भाषा में उन्होंने Man is the Master of his Mind, Body and Circumstances, नामक पुस्तक का हिन्दी में स्वच्छन्द अनुवाद किया है।

आशा है इस पुस्तक से नवयुवकों को विशेष लाभ पहुँचेगा और जैसा इस पुस्तक का नाम है वैसा ही यह अपने को सिद्ध भी करेगी।

दारागञ्ज, प्रयाग
१-१-४४

केदारनाथ गुप्त

श्री केदा

छात्र

विषय-सूची

—:o:—

मनुष्य ही अपने भाग्य का निर्माता है

—:०:—

विचारों की छिपी हुई शक्ति

मनुष्य स्वयं अपने सुख-दुख का कर्ता और विधाता है। यही नहीं, वह सुख दुःख को स्थाई रखने वाला भी है। सुख-दुःख वाह्य कारणों से नहीं होते, आन्तरिक विचार व स्थितियों से होते हैं। सुख-दुख का कारण न देव है, न दानव, न परिस्थितियाँ हैं, किन्तु विचार हैं। विचार कर्मों का परिणाम है और कर्म विचारों का प्रत्यक्ष रूप है। मन का दृढ़ संकल्प (निश्चय) मनुष्य को कार्यों में नियुक्त करता है और उन कर्मों का फल सुख व दुख होता है। जब मन के दृढ़ संकल्प में इतनी शक्ति है तो हमें अपने सुख-दुख के लिए, अपने दृढ़ विचारों में परिवर्तन करना होगा। यदि हम अपने दुख को सुख में परिवर्तित करना चाहते हैं तो हमें अपनी उन संकल्प व स्वभाव

कलित क्रियाओं को बदलना होगा जिनके द्वारा हमें ३... प्राप्त हुआ है और तब निश्चयतः हमें सुख की प्राप्ति होगी। वह मनुष्य कदापि सुखी नहीं हो सकता जो अपनी क्रियाओं व विचारों द्वारा स्वार्थी है; वैसे ही वह मनुष्य कदापि दुःखी नहीं हो सकता जो अपनी क्रिया व विचार द्वारा दूसरों का हित करता है तथा परोपकारी है; जैसा कारण है, तदनुरूप कार्य होगा। मनुष्य का फल में अधिकार नहीं है, परन्तु कर्म में उसका अधिकार है; वह सुख को दुख अथवा दुख को सुख नहीं बना सकता, पर जिन कारणों से दुख व सुख होता है, उन्हें बदल सकता है; वह अपने स्वभाव को पवित्र बना सकता है, अपने गुणों अथवा स्वभाव को परिवर्तित कर सकता है। अपने स्वभाव पर विजय पाने मे अपार शक्ति है और अपने स्वभाव को परिवर्तित करने में असीम आनन्द है। जैसे, एक मनुष्य बड़ा क्रोधी है अथवा अभिमानी है। अब यदि वही शान्ति धारण करने वाला हो जाता है और सब से नम्रता का व्यवहार करता है तो उस मनुष्य को व उसके मित्रों को कितना आनन्द होगा।

जनित क्रियाओं को बदलना होगा जिनके द्वारा हमें दुःख प्राप्त हुआ है और तब निश्चयतः हमें सुख की प्राप्ति होगी। वह मनुष्य कदापि सुखी नहीं हो सकता जो अपनी क्रियाओं व विचारों द्वारा स्वार्थी है; वैसे ही वह मनुष्य कदापि दुःखी नहीं हो सकता जो अपनी क्रिया व विचार द्वारा दूसरों का हित करता है तथा परोपकारी है; जैसा कारण है, तदनुरूप कार्य होगा। मनुष्य का फल में अधिकार नहीं है, परन्तु कर्म में उसका अधिकार है; वह सुख को दुःख अथवा दुःख को सुख नहीं बना सकता, पर जिन कारणों से दुःख व सुख होता है, उन्हें बदल सकता है; वह अपने स्वभाव को पवित्र बना सकता है, अपने गुणों अथवा स्वभाव को परिवर्तित कर सकता है। अपने स्वभाव पर विजय पाने में अपार शक्ति है और अपने स्वभाव को परिवर्तित करने में असीम आनन्द है। जैसे, एक मनुष्य बड़ा क्रोधी है अथवा अभिमानी है। अब यदि वही शान्ति धारण करने वाला हो जाता है और सब से नम्रता का व्यवहार करता है तो उस पुरुष को व उसके मित्रों को कितना आनन्द होगा।

प्रत्येक मनुष्य अपने विचार द्वारा सीमित है, फिर भी वह अपने विचारों को उन्नत और उच्च बना सकता है, अपने दायरे को बढ़ा सकता है। वह नीच पुरुषों को त्याग सकता है और उन्नतिशील उच्च पुरुषों के समाज में प्रवे

उन विचारों को जो अन्धकारमय और प्रगित हैं, रोक सकता है तथा सुन्दर व शान्त स्वरूप विचारों को दृढ़ कर सकता है; और जैसे ही वह ऐसा करेगा, वह शान्ति व सुन्दरता की ओर अग्रसर होगा और संसार की पूर्णता की ओर बढ़ेगा, क्योंकि मनुष्य अपने विचारों के अनुसार उन्नतिशील होते हैं अथवा अवनति के गड्ढे में गिरते हैं। उनका संसार उतना ही अंधकारमय व सँकुलित होता है जैसे उनके विचार; इसी प्रकार वे उतने ही महान्, उन्नतिशील और प्रकाशमय होते हैं, जितनी उनकी विचार-शक्ति। प्रत्येक वस्तु जो उनके सहवास में आती है, उनके विचारों द्वारा प्रभावित होती है।

उस मनुष्य की ओर ध्यान दो जो लालची, शङ्कित हृदय व डाह मे जलने वाला है। उसे प्रत्येक वस्तु सकुचित, अल्प और तुच्छ मालूम होती है। चूँकि उसमें स्वयं कोई महत्ता नहीं है, इसलिये उसे कहीं भी महत्ता दृष्टिगोचर नहीं होती; चूँकि वह स्वयं तुच्छ है, अतएव वह किसी में महत्ता देखने के योग्य नहीं है। उसका ईश्वर भी एक लालची प्राणी है, जिसे रिश्वत द्वारा प्रभावित किया जा सकता है। वह संसार भर के मनुष्यों व स्त्रियों को अपने ही समान तुच्छ व मतलबी समझता है। यहाँ तक कि महान् परोपकार व उदारता के कार्यों में भी उसे नीचता, क्षुद्रता, व कमीनेपन का अनुभव होता है। इसी प्रकार उस

भिन्न विचारों वाले होते हैं। उनमें केवल अहंकार वि सम्बन्धी अन्तर ही नहीं होता है, परन्तु उनकी बुद्धि व उन कार्य शक्ति भी भिन्न भिन्न होती है। यह बात ध्यान रखने है कि हिंसा से कभी स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती और हिं कभी कोई महान् कार्य नहीं कर सकता। हिंसक का अनुयाई हिंसक होता है और महात्मा का अनुयाई महात्मा होता मनुष्य का विचार उसके लिए एक दर्पण का काम देता प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों से सीमित है, उसका समाज उ विचारों के अनुरूप है। वही जानता है जो कुछ वह स्व जो मनुष्य जितना सकुचित होगा, उतना ही संकुचित उस संसार होगा। यह बात ध्यान देने की है कि अल्प में महा नहीं समा सकता और अल्प में महान् को समा लेने की शक्ति हीं होती है। जो मनुष्य महान् बनता है, उसे उन अव तयों का ज्ञान रहता है जिनसे वह महान् बना है। मनु के विद्यार्थियों की भाँति अपने ज्ञान व अज्ञान पार समाज में अपनी कक्षा पाते हैं। जिस प्रकार प्रथम के विद्यार्थी को हाई-स्कूल की योग्यता आश्चर्यजनक है प्रकार अल्प विचार वाले मनुष्य को महान विचार वाले की योग्यता आश्चर्य का कारण है। परन्तु जैसे प्रथम का विद्यार्थी कभी न कभी हाई स्कूल की योग्यता प्राप्त

-रता है और मध्य में जितनी कक्षायें हैं, उन्हें पास करता है,
से ही संसार में वे मनुष्य भी जो पापी, क्रोधी व स्वार्थी हैं,
पाप, क्रोध व स्वार्थ पर विजय पाने से उदार, महान तथा
संसार को विजय करने वाले और संसार को पाप से दूर करने वाले
हो सकते हैं।

बाह्य-जगत

मनुष्य पर सहवास का प्रभाव पड़ता है। जैसा उ
सहवास होता है, वैसा ही वह हो जाता है। धार्मिक पुरुष क
सहवास धार्मिक व पापी का सहवास पाप रूप है। जगत में यह
कहावत है कि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है।
मनुष्य अपने पड़ोसियों से कभी पृथक नहीं रह सकता है। वह
विचारों द्वारा उनसे जकड़ा हुआ है और यही विचार समाज की
दृढ़ नींव है।

मनुष्य अपनी इच्छाओं के अनुकूल संसार नहीं बना सकत
है। वह संसार की सब वस्तुओं को व प्रकृति को पलट नहीं
सकता। वह अपनी इच्छाओं को त्याग कर संसार के अनुकूल
हो सकता है। वह समाज को नहीं पलट सकता, किन्तु स्वयं
समाज के अनुकूल हो सकता है। वह परिस्थितियों को नहीं
बदल सकता है, परन्तु परिस्थितियों के अनुकूल कर्म कर सकता
है और अपने मन के विकास द्वारा चतुरता से परिस्थितियों का
सामना करने का मार्ग सोच सकता है। विचारों से ही वस्तुएं
हैं। तुम अपने विचार को पलटो तो परिस्थिति
ोगी। चेहरा साफ-साफ देखने के लिए दर्पण निर्मल

ना चाहिए। यदि दर्पण मलीन है अथवा दूषित है तो शक्ल
ी मलीन व दूषित दिखलाई देगी। अशान्त मन अशान्त
ंसार की सूचना देता है। मन को जीतो, उसे शान्त करो
ौर ठीक-ठीक कार्य करने के योग्य बनाओ तो तुम्हें मालूम होगा
ि संसार कितना शान्त, सुन्दर व पूर्ण है। वह तुम्हें बहुत ही
ला मालूम होगा।

मनुष्य को अपने मन के भीतर अपार शक्ति प्राप्त है,
जिसके द्वारा वह पवित्र व पूर्ण बन सकता है। परन्तु बाह्य
गत में यह शक्ति परिमार्जित व सीमित है। संसार में मनुष्य
वय अपने आपको जैसा चाहे बना सकता है परन्तु दूसरे का
नर्माण करने में उसकी शक्ति सीमित है। मनुष्य हजारों मनुष्य
मे एक यूनिट (इकाई) है। ये सब यूनिट उच्छृङ्खलता से
समाज में नहीं रह सकते बल्कि एक दूसरे के सहयोग से रह
सकते हैं। यदि मेरे सहयोगियों को मेरे कर्मों से कष्ट पहुँचता
है, तो वे इन कर्मों को रोकने का प्रयत्न करेंगे, व मेरे विरुद्ध
षड्यन्त्र करेंगे व आन्दोलन खड़ा करेंगे। मनुष्य अपने संक्रामक
रोग के कीड़ों को शरीर के बाहर निकाल देता है, आपरेशन
करा लेता है, उसी प्रकार समाज पापी मनुष्य को निकाल
देता है। तुम्हारी गल्तियाँ समाज रूपी शरीर के ऊपर
आघात हैं, तुम्हारा दुःख या दर्द समाज के दुःख या दर्द को

दूसरों से जो हानि पहुँचती है वह तुम्हारे ही कर्मों का फल है। बाहरी परिस्थितियाँ साधन मात्र हैं, किन्तु तुम कारण हो। भाग्य कर्मों का विपाक है। जीवन का फल (सुख व दुःख) दोनों मनुष्यों को अपने कर्मानुसार मिलते हैं। धार्मिक मनुष्य स्वतन्त्र है, उसे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता, उसको कोई नष्ट नहीं कर सकता और उसकी शान्ति को कोई भंग नहीं कर सकता। मनुष्यों के प्रति उसकी सहानुभूति के कार्य उनकी हिंसावृत्ति को नष्ट कर देते हैं। यदि कोई उस धार्मिक मनुष्य को दुःख या हानि पहुँचाना चाहता है तो वह स्वयं दुःख और हानि उठाने लगता है, उलटे उसी को दुःख होता है। धार्मिक मनुष्य को तो क्लेश छू भी नहीं पाता। धार्मिक व अच्छे मनुष्य की धार्मिकता और अच्छाई ही उसका परम शान्ति व सुख है, यही उसकी निजी शक्ति है, उसकी जड़ चरित्र में है और उसका फल प्रसन्नता है।

प्रायः लोग सोचते हैं कि दूसरों के कार्यों से उसकी हानि हो सकती है, यहाँ वे भूल करते हैं। उनकी हानि उन कर्मों द्वारा नहीं होती बल्कि उन कर्मों के चिन्तन करने से होती है। उदाहरण के लिए "बदनामी" को ले लीजिए। मनुष्य समझता है कि अमुक व्यक्ति के बदनाम करने से उसकी बदनामी हो जायगी। किन्तु सच यह है कि जो किसी को बदनाम

करना चाहता है, वह दूसरे को बदनाम करने के बजाय स्वयं बदनाम हो जाता है। यदि किसी पुरुष के लिए कहा जाय कि उसका चरित्र खराब है तो सुनने वाला यह अवश्य समझता है कि बदनाम करने वाले का भी चरित्र अवश्य खराब होगा, नहीं तो वह इसको कैसे जानता? बदनामी का डर किस प्रकार दुःख पहुँचाता है इसको समझो। जब मनुष्य यह समझता है कि मैं बदनाम किया जा रहा हूँ तो वह इस बात की चेष्टा करता है कि जो बात मेरे चरित्र के सम्बन्ध में कही गई है, वह गलत साबित हो, वह इसके लिए सफाई ढूँढ़ता है। इस तौर पर वह बदनामी को सत्यता का रूप देता है। उसको बदनामी के द्वारा अशान्ति नहीं होती, बल्कि बदनामी के डर के द्वारा अशान्ति होती है। धार्मिक पुरुष अपनी निश्चलता से प्रमाणित करता है कि उसे इस प्रकार के कार्य से कोई अशान्ति नहीं होती। वह समझता है, इसी से उदासीन रहता है, क्योंकि वह वैसे वातावरण में नहीं रहता है। उस पर बदनामी का कोई असर नहीं होता, वह अपने मे किसी प्रकार की हानि का विचार नहीं आने देता, वह मानसिक अन्धकार से, जिसमें ऐसे कार्य उत्पन्न होते हैं, बहुत दूर रहता है और जिस प्रकार बालक सूर्य पर ईंट फेंक कर सूर्य का कुछ बिगाड़ नहीं सकता है उसी प्रकार धार्मिक पुं [illegible] कुछ बिगाड़ नहीं सकता। भगवान

अथवा कमज़ोरी उसमें दृढ़ निश्चय व संकल्प शक्ति की कमी है। जब वह यह समझने लगता है कि वे ही परिस्थितियाँ उसके साधन हैं; अथवा उस भाग्य ही के कारण हैं, जिन पर उसे विजय पाना है, तब ऐसे समय में मनुष्य की आवश्यकताएँ ही आविष्कार की जननी का रूप धारण कर लेती हैं और उसके साधन के रूप में परिणत हो जाती हैं। मनुष्य ही अपनी उन्नति का सर्वशक्तिमान कारण है। यदि उसका मन ठीक-ठीक अपने कार्य में लगा है तो वह परिस्थितियों का दोष कभी नहीं देगा, किन्तु वह उन पर विजय पायेगा जो परिस्थितियों को दोष देता है, उसने अब तक मनुष्य शक्ति पर विचार नहीं किया और न उसे वास्तव में प्राप्त किया है; उसे आवश्यकताएँ उस समय तक दुःख देंगी और कोड़े लगाएँगी जब तक वह सम्पूर्ण मनुष्य शक्ति का संचार अपने मन में न करेगा और परिस्थितियों पर विजय न पा लेगा। परिस्थितियाँ कमज़ोर मनुष्य को दुःख देती हैं, किन्तु साहसी और बलवान मनुष्य के वश में रहती हैं।

संक्षेप में हमारी स्वतन्त्रता व परतन्त्रता हमारे विचारों से ही उत्पन्न होती हैं। हमारे विचार ही हमारी बेड़ियाँ हैं, हमारे कारागार हैं और हमारे विचार ही हमें बेड़ियों और कारागार से करनेवाली भी हैं; वे ही हमें महलों में ले जाते हैं, जहाँ हम रहते हैं। यदि मैं यह विचार करता हूँ कि मेरा

सहवास अथवा परिस्थितियाँ मुझमें अधिक बलवान हैं तो मैं परतन्त्र हूँ और उन परिस्थितियों के द्वारा जकड़ा रहूँगा, किन्तु इसके विपरीत यदि मेरा विचार ऐसा है कि मैं इन परिस्थितियों को वश में कर सकता हूँ तो यह विचार ही मुझे स्वतन्त्र कर देगा। हर एक मनुष्य को अपने विचारों के प्रति जागरूक होकर सोचते रहना चाहिए कि वे कहाँ जा रहे हैं, स्वतन्त्रता की ओर थवा परतन्त्रता की ओर. जो विचार उसे परिस्थितियों अथवा ाग्य का गुलाम बनाते हैं उन्हें उसे त्याग देना चाहिए और ो विचार उसे परिस्थितियों का गुलाम नहीं बनाते उन्हें उसे हण करना चाहिए।

यदि हम अपने सहवासियों से डरते हैं; अथवा दूसरों की राय ा डरते हैं, अथवा गरीबी से डरते हैं, अथवा मित्रों और ाभाव की कमी से डरते हैं तो हमें अपने को परतन्त्र समझना चाहिए और हम अपने आन्तरिक सुख का अनुभव नहीं कर सकते अथवा हम न्याय का आदर नहीं करते। परन्तु यदि हम पवित्र और स्वतन्त्र हैं, यदि हम जीवन में असफलता व हानियों से नहीं डरते, किन्तु हम यह समझते हैं कि यही असफलताएँ व हानियाँ हमारी उन्नति का कारण होंगी तो हमारे लिए कोई रुकावट या बाधा ऐसी नहीं है जो हमें अपने उद्देश्य की पूर्ति से रोक सके या वंचित रख सके।

आदत, इसकी परतन्त्रता व स्वतन्त्रता

मनुष्य स्वभाव का दास है। तो क्या वह स्वतंत्र है हाँ वह स्वतंत्र है। मनुष्य ने जीवन नहीं बनाया और जीवन के नियम बनाये; जीवन और नियम तो अनादि हैं, नि हैं, मनुष्य उन नियमों के अन्दर है, वह उनको अपना सकता और उन्हें मान सकता है अथवा उनके आधीन होकर आचरा कर सकता है। मनुष्य में इतनी शक्ति नहीं कि वह जीवन नियम बनाये, वह केवल इतनी शक्ति रखता है कि अपनं इच्छा, स्थिति व शक्ति के अनुसार उन नियमों में से अपन अनुकूल नियमो को पसन्द कर ले। मनुष्य सृष्टि के मूलाधार रूप नियमों को खोज से पाता है, उनका आविष्कार नहीं करता उन नियमों के सम्बन्ध में अनभिज्ञता संसार में दुःख का कारर है। उनका उल्लंघन करना नितान्त भूल है और परतन्त्रता क कारण है। अब यह प्रश्न उठता है कि कौन स्वतंत्र है? व चोर जो रोज नियमों का उल्लंघन करता है अथवा वह नागरि जो उनका पालन करता है? कौन स्वतन्त्र है? वह मूर्ख ज स्वेच्छाचार करना चाहता है अथवा वह ज्ञानी जो सत्य व ठीक व उचित कार्य्य करता है।

मनुष्य आदतों का कीड़ा है। वह इस नियम का उल्लंघन तो नहीं कर सकता, किन्तु अपनी आदतों को बदल सकता है। वह अपनी प्रकृति के नियमों को नहीं बदल सकता है। कोई मनुष्य पृथ्वी की आकर्षण शक्ति (Law of Gravity) को नहीं हटा सकता, किन्तु सभी उस आकर्षण शक्ति द्वारा खिंच जाते हैं, वे झुककर उसका उपभोग करते हैं, उसका उल्लंघन नहीं करते अथवा उससे उदासीन नहीं रहते हैं। मनुष्य दीवालों से नहीं टकराता अथवा खड्डर व खाई में इस आशा से नहीं गिरता कि प्रकृति अपना नियम बदल देगी। वह आग में इस आशा से नहीं कूदता कि जलेगा नहीं अथवा गहरे पानी में यह सोचकर नहीं गिरता कि डूबेगा नहीं, बल्कि दीवार के किनारे से, आग व पानी से, बचता हुआ चलता है। ठीक इसी प्रकार जीवन के नियमों का पालन व उनके अनुकूल आचरण करने की समस्या है। जो नियम वेद, शास्त्र व सत्पुरुषों द्वारा निर्धारित किये गये हैं, वे प्रकृति के अनुकूल होने से सर्वमान्य हैं। उनको न मानना आग व पानी में फाँदने के समान है और उसका परिणाम दुःख है?

मनुष्य अपनी आदत का उसी प्रकार दास है जिस प्रकार आकर्षण शक्ति का। हाँ, वह आदत का बुद्धिमानी के साथ अथवा मूर्खता के साथ उपयोग कर सकता है। सारांश यह कि

मनुष्य अपनी आदत के कारण कुछ न कुछ अवश्य करेगा। चाहे वह अच्छा कर्म करे अथवा बुरा, बुद्धिमान बने अथवा मूर्ख, चाहे आग में फांदे अथवा आग बुझाये, पानी में गिरे अथवा उसमें पुल बँधवा दे। शुभ कार्य करना, आग बुझाना पुल बाँधने के समान है, अशुभ कार्य अग्नि में फाँदने व कुएँ में गिरने के समान है। जिस प्रकार विज्ञानवादी प्रकृति की वस्तुओं को व उनके नियमों को जानकर उनका उचित प्रयोग करते हैं, उनसे लाभ उठाते हैं, उसी प्रकार बुद्धिमान् लोग धार्मिक नियमों को जानते हैं, उनका प्रयोग करते हैं व उनसे लाभ उठाते हैं। मूर्ख अपनी बुरी आदतों का गुलाम है बुद्धिमान उन्हीं आदतों का उचित व ठीक-ठीक प्रयोग करता है, जो उसे सन्मार्ग में लगाती है। वह अपनी आदत का बनाने वाला नहीं, अपने आदत को उचित दिशा में ले चलने वाला है। वह अपनी आदतों का राजा है, उस पर शासन करने वाला है। वही मनुष्य बुरा है जिसकी आदत बुरी है, जिसके कर्म और विचार बुरे हैं। वही मनुष्य अच्छा है, जिसकी आदत, विचार व कर्म अच्छे हैं। बुरा मनुष्य अपने स्वभाव कर्म और विचारों को अच्छा बनाने से अच्छा बनता है, वह प्रकृति के को नहीं बदलता बल्कि अपनी आदत को प्रकृति के बनाता है। अपनी स्वार्थमयी इच्छाओं की अपेक्षा

वह धार्मिक नियमों का पालन करता है, अपनी तुच्छ वासनाओं का नाश कर उच्च पदवी को प्राप्त करता है। नियम तो वैसा ही रहता है, किन्तु आदत में परिवर्तन होता है। यानी बुरी आदत अच्छी आदत में परिणत हो जाती है। एक ही कार्य को बार-बार करने का नाम आदत है। मनुष्य उन्हीं विचारों को, उन्हीं कर्मों को और उसी अनुभव को बार-बार दुहराता है, यहाँ तक कि वे उसके चरित्र के साथ घुल मिल जाते हैं, उसी के अवयव हो जाते हैं। योग्यता नियमित आदत ही का नाम है। विकास मानसिक शक्ति का संचार है। मनुष्य आज सैकड़ों विचारों व कर्मों का परिणाम है। वह एकाएक उत्पन्न नहीं हो गया है धीरे-धीरे बना है और अभी बन रहा है। उसका चरित्र उसकी इच्छानुसार बना है। जैसा विचार व कर्म वह करता है तदनुरूप वह हो जाता है। संक्षेप में प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों और कर्मों का सचारक है। मनुष्य अपने जिन गुणों का प्रदर्शन करता है वे उसके उन विचारों और कर्मों के फल हैं, जिनको वह दीर्घकाल से विचारता व करता है और वे गुण मशीन की भाँति बिना परिश्रम के विकसित होते जाते हैं, उनके लिए उसे कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता है और कुछ काल के बाद मनुष्य इतना निकम्मा हो जाता है कि वह फिर इस प्रकार बनी हुई

आदत के वशीभूत हो जाता है। यह बात अच्छे व बुरे दोनों स्वभावों के लिये लागू है। जब बुरी आदत के लिये लागू होती है, तब कहा जाता है कि मनुष्य बुरी आदत का शिकार हो गया और जब अच्छी आदत के लिए लागू होती है तब कहा जाता है कि उसकी आदत अत्यन्त मधुर है, अच्छी है। प्राणीमात्र अपनी आदत के वशीभूत रहेंगे, चाहे वह आदत अच्छी हो चाहे बुरी। इस कारण बुद्धिमान मनुष्य अच्छी आदत को ढूँढ़ता है और उसे पसन्द करता है, क्योंकि ऐसा करने से उसे प्रसन्नता व स्वतन्त्रता प्राप्त होती है और बुरी आदत के वशीभूत होने से उसे नरक यातना दुःख और परतंत्रता भोगनी पड़ती है।

आदत का यह नियम लाभप्रद है क्योंकि जहाँ एक ओर यह मनुष्य को जंजीरो से जकड़ती है, वहाँ दूसरी ओर उसे अच्छे मार्ग के लिए भी तैयार करती है, स्वभाव से ही अच्छाई की ओर बिना किसी परिश्रम के झुकाती है और सुख और स्वतन्त्रता प्राप्त कराती है। आदत की इस निरन्तर स्थिति को देख कर लोगों ने मनुष्य की स्वतन्त्रता व स्वेच्छा को स्वीकार किया है; वे यह कहते हैं कि मनुष्य अच्छा या बुरा ा है, वैसा अपनी आदत से विवश है। यह सत्य है कि ष्य अपनी मानसिक शक्ति का पुतला है, अथवा यों कहिये वह अपनी मानसिक शक्ति का विकास मात्र है; परन्तु

यदि अखड पुरुषार्थ द्वारा परिश्रम किया गया तो सफलता में कोई संदेह नहीं है। क्योंकि यदि बुराई, जो मनुष्य की आदत में नहीं है, स्वभाव के अंदर कुछ काल में प्रवेश कर सकती है, तो अच्छाई, जो मनुष्य के स्वभाव में स्वाभाविक है, अवश्य प्रवेश करेगी। प्रत्येक मनुष्य को विचार करना चाहिए कि कोई मनुष्य स्वभाव से बुरा नहीं है, वास्तव में वह अपने ही कर्मों से बुरा बन गया है। मनुष्य तब तक दुःख व भूल को भोगता है जब तक वह यह समझता है कि मैं इस दुःख व भूल से छुटकारा नहीं पा सकता अथवा इस पर विजय प्राप्त करने में समर्थ नहीं हूँ। यदि बुरे स्वभाव के विषय में मनुष्य की यह भावना है कि वह इसको बदल नहीं सकता तो निसंदेह उसे बदल नहीं सकता। मनुष्य के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा उसी की निराशा है, उसी की अल्प विचार शक्ति है। यह सत्य ही कहा है कि मनुष्य की उन्नति का रोड़ा उसकी बुरी आदत उतनी मात्रा में नहीं है, जितनी मात्रा में उसका यह विचार "कि मैं इस बुरी आदत पर विजय नहीं पा सकता।" वह मनुष्य कैसे अपनी बुरी आदत छोड़ सकता है, जिसके मस्तिष्क में यह विचार दृढ़ है कि मैं इस आदत को छोड़ नहीं सकता। मनुष्य का सबसे भारी शत्रु यही विचार है कि मैं अपने पापों को नहीं छोड़ सकता। यही बड़ा भारी शैतान है जो उसको धोखा दिया करता है। इस विचार

को निकालो तो तुम अपने पापों से मुक्त होओगे। याद रखो कि जिस समय तक तुम ऐसा समझ रहे हो कि मैं इस पाप के न करने में असमर्थ हूँ उस समय तक तुम वही पाप कर रहे हो और ज्योंही तुम्हारे मन में यह विचार आया और तुमने अपनी संकल्प-शक्ति को बढ़ाया त्योंही तुमने उस पाप पर विजय प्राप्त कर ली।

मैं यह कार्य नहीं कर सकता, मैं ऐसा करने में असमर्थ हूँ, मैं अपनी पुरानी आदतें नहीं छोड़ सकता, मैं अपना स्वभाव नहीं पलट सकता, मैं अपने क्रोध को नहीं रोक सकता, मैं अपने पापों से मुक्त नहीं हो सकता, यह विचार दूषित व घृणित हैं और इन्हीं विचारों द्वारा मनुष्य पराजय व परतंत्रता से विवश होता है। इन विचारों का कोई महत्व नहीं है, ये केवल मनुष्य की कमजोरी के द्योतक हैं। इन कमजोरियों को उसे बलपूर्वक हटाना चाहिए और इनकी जगह पर यह आशापूर्ण वाक्य कि 'मैं पाप से मुक्त होऊँगा, मैं अपनी बुरी आदतों को छोड़ दूँगा, मैं क्रोध नहीं करूँगा, मैं कोई पाप नहीं करूँगा आदि विचारों के द्वारा अपनी संकल्प-शक्ति दृढ़ करनी चाहिए। मनुष्य अपनी संकल्प-शक्ति द्वारा बुरे से बुरे कार्य कर सकता है, [illegible] ग्र के लिए चोर चोरी के लिए उच्च से उच्च अट्टालिका तक पहुँचता है, कामी अपनी प्रेयसी से मिलने के लिए

[illegible]या से क्या नहीं करता है। क्या मनुष्य अपनी संकल्प-
शक्ति द्वारा शुभ कर्म नहीं कर सकता ? राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य
को नहीं छोड़ा, त्रैलोक्य के राज्य को छोड़ दिया, अर्जुन ने
अप्सरा को मा पुकार कर निराश कर दिया; रंतिदेव ने ४८ दिन
भूखे रहने पर भी भोजन का लोभ नहीं किया, मोरध्वज ने अपने
आर्माद पुत्र को आरे से काट डाला, हाल ही में राणा प्रताप
ने पहाड़ी चट्टानों पर सोकर व अपने नन्हें-नन्हें बच्चों को
अन्न अन्न के लिए तरसते हुए देख कर भी परतन्त्रता स्वीकार
[illegible]। इसी प्रकार गुरु गोविन्द सिंह के नाबालिग लड़कों ने
[illegible] दीवाल में चुना जाना स्वीकार कर लिया परन्तु अपना
[illegible] देना स्वीकार नहीं किया, महारानी लक्ष्मी बाई स्त्री होते हुए
[illegible]श्व पर किले की उच्च अट्टालिका से रणक्षेत्र में फाँद
[illegible]। यह सब महान कार्य मनुष्य व देवियाँ अपनी महान
संकल्प शक्ति द्वारा ही कर सकी हैं। यदि उनके विचार में यह
कल्पना होती कि हम ऐसा नहीं कर सकते तो आज इतिहास में
हम उनके कृत्यों का उल्लेख क्यों कर पाते; सच तो यह है कि
परतन्त्रता की कड़ हमने अपने आप बनायी है; हमीं आप अपने
उद्धारक होंगे और तब स्वतन्त्र बनेंगे। मनुष्य की यह बड़ी भारी
भूल है कि वह अवतार या महान् व्यक्ति के ऊपर सहारा किये
हुए बैठा है; जब तक प्रत्येक मनुष्य यह नहीं समझेगा कि मैं

ही अपने आप अवतार हूँ; मैं ही अपना सुधारक हूँ; तब तर्क न वह स्वतन्त्र हो सकता है और न सँभल सकता है। यह पुनः पुनः ध्यान देने योग्य बात है कि मनुष्य ही सत्य है और मनुष्य ईश्वर है। जो इस प्रकार विचार करता है वही अच्छा विचार करता है और अच्छा कर्म करता है।

आदत ही हमारा बंधन है और आदत हमें मुक्त करती है, आदत पहले विचार मे आती है फिर कार्यरूप में परिणत होती है। बुरे विचारों को अच्छे में परिणत कर और परिणाम में देखोगे कि अच्छे कर्म हुए। यदि तुम बुराई करने में हठ करोगे तो परतन्त्रता की जंजीरों मे जकड़े रहोगे; यदि अच्छाई मे हठ करोगे तो स्वतन्त्रता के महलों में विहार करोगे। जो अपनी परतन्त्रता चाहता है वह बुरे कर्म करे; तुम उनका साथ छोड़ दो, तुम उन पुरुषों का अनुसरण करो जो अच्छे कर्म करते हैं। मैं तो उन्हीं पुरुषों का स्वागत करता हूँ जो अच्छे कर्म करते हैं।

स्वास्थ्य

ाज मनुष्य समाज में सहस्रों से भी अधिक स्वास्थ्य
ो संस्थायें विद्यमान हैं, जिससे यह प्रगट है कि वर्तमान
में मनुष्य का स्वास्थ्य ठीक नहीं है और मनुष्य समाज
त है। जिस प्रकार सहस्रों से भी अधिक धार्मिक संस्थाएं
को मानसिक शान्ति प्रदान करने के लिए प्रस्तुत होने पर
पुनः मानसिक अशान्ति उत्पन्न करती है उसी प्रकार अस्पताल
दि तथा स्वास्थ्य-वर्द्धक और रोग-निवारक संस्थाएँ रोगों की
ही कर रही हैं। यद्यपि प्रत्येक रोग के निवारण के लिए
ख्य अस्पताल हैं, तथापि रोग का निवारण तो दूर रहा, उलटे,
में वृद्धि हो रही है। वैसे ही नाना प्रकार के धर्म मनुष्य-समाज
पाप व दुःख निवारण करने की अपेक्षा मनुष्य-समाज में पाप
दुःख की वृद्धि ही करते हैं।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या सब धार्मिक संस्थाएँ
ौर संसार के धर्म निरर्थक हैं, वैसे ही क्या स्वास्थ्य की संस्थाएँ
वास्थ्यगृह व अस्पताल निरर्थक और अपव्यय के कारण हैं।
ो क्या इन्हें बन्द कर देना चाहिए? गत अध्यायों में हमने
अपने जो विचार प्रकाशित किये हैं वे ही इन प्रश्नों के भी उत्तर

इनका निर्माण ही आवश्यकतानुकूल हुआ है। अब हमें किस
बात की आवश्यकता है, इसे हमें स्वयं विचार करना चाहिए।

रोग व दर्द, ज्वर और दुःख के समान बाह्य उपचारों से नहीं
जा सकते। इनका निवास मस्तिष्क में है। यह मैं नहीं कहता कि
रोगों पर प्राकृतिक अवस्थाओं का प्रभाव नहीं है। उनका अवश्य
ही एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव है। और कारणों की भाँति मन भी एक
कारण है। विलायत में काला ज्वर का कारण गन्दगी कहा जाता
है। इस गन्दगी का सम्बन्ध मन से अधिक है, अर्थात् गन्दगी
का मुख्य कारण मन है। आधुनिक मनुष्य समाज में नाना प्रकार
की इच्छाओं से अशान्त रहता है। ये ही इच्छाएँ रोग का कारण
हो जाती हैं। हम विलासिता के पदार्थों का अवलोकन करते हैं,
उनके पाने के लिए मन में अशान्त रहते हैं और एक पदार्थ के
पाने के बाद दूसरे को पाने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार
इच्छाओं की परम्परा बढ़ती है। जैसे आलमारी के एक डिब्बे
के बाद दूसरे डिब्बे का खाना होता है, उसी प्रकार एक इच्छा
के बाद दूसरी इच्छा उत्पन्न होती है। परिणाम यह होता है कि
[illegible] है, [illegible] से [illegible] है।
[illegible] इच्छाएँ [illegible] हैं और इन्हीं
[illegible] है। [illegible] से
[illegible] है। [illegible]
है

में संग्राम की बीमारी है, इसका मूल कारण मनुष्य की स्वार्थपरता है। हमारी इच्छाएँ इतनी अधिक हो गयी हैं कि हम अपने पड़ोसी के स्वत्वों को हड़प कर जाना चाहते हैं। यदि हम जान- वरों व पशुओं की ओर देखें तो हमें पता चलेगा कि उनका जीवन हमारे जीवन से शान्त है। पशु भोजन पा जाने के बाद शांति से सोता है, परन्तु मनुष्य इच्छाओं के अधीन होकर भ्रमित और अशान्त रहता है। पशु अपनी परिस्थिति के अनुकूल दूसरे पशुओं से मिलकर रहते हैं। सारस, तोते, गाय, भैंस आदि के झुण्ड देखे गये हैं; चींटियों की तादाद का तो कहना ही न हैं, क्या यह जीव सृष्टि मनुष्य सृष्टि से कम है? परन्तु हम इ सृष्टि में कितनी एकता (Harmony) देखते हैं। क्या मनु समाज की भाँति आधुनिक समय में पशु अधिक सुखमय न है? हाँ, हम ही अवश्य इस सृष्टि के भी घातक हैं। आधुनि समय में मनुष्य पशु से भी अधिक पशुत्वपूर्ण पापी व रोगी है, जिस समय मनुष्य परस्पर डाह, द्वेष आदि के भाव छोड़ देगा तथा जिस समय वह स्वार्थपरता का त्याग कर सेवा भाव ग्रहण करेगा, जिस समय वह अपने पड़ोसी के आनन्द को बढ़ावेगा और स्वयं त्याग करेगा उसी समय वह मनुष्य देवरूप धारण कर मनुष्य समाज में सुख की वृद्धि करेगा। शरीर मन का प्रतिबिम्ब है। शरीर पर मानसिक विचारों का प्रभाव पड़ता है। शरीर को

की बात माननी पड़ती है। चतुर वैज्ञानिक प्रत्येक
रिक अवस्था का कारण मन में ढूंढ़ लेगा।
मानसिक शान्ति व निर्मल चरित्र शरीर को स्वस्थ बनाते हैं।
नुष्य रोगग्रस्त है अथवा जिसको कोई शारीरिक व्यथा है,
यह मानसिक उपचार आरम्भ करता है तो उसे दवा सेवन
की भाँति एकाएक लाभ तो न होगा किन्तु उसे धीरे-धीरे
लाभ होगा जो टिकाऊ होगा। हम देखते हैं कि धर्मपथ
अग्रसर होने वाला व्यक्ति शनैः-शनैः ही धार्मिक होता है, उस
स्थाओं व परिस्थितियों को वश व अनुकूल बनाने में समय
आवश्यकता होती है। यद्यपि वह एकबारगी रोग से मुक्त
गा, तथापि उसका दृढ़ विचार मानसिक शान्ति व चित्तवृत्तियों
मेल शनैः-शनैः उसकी रोगावस्था को दूर करेगा। इसके
विपरीत दवाओं से वह शीघ्र हो रोग-मुक्त हो जावेगा। परन्तु
मानसिक अशान्ति व मानसिक विकार के कारण रोग जड़ से न
जावेगा, और सम्भव है अधिक उग्र व भयानक रूप धारण कर ले।

संक्षेप में मन मुख्य है, शरीर गौण है। यदि मन प्रबल है तो
शरीर कुछ नहीं कर सकता। मन की प्रबलता के कारण ऋषियों
ने नाना प्रकार के शारीरिक कष्ट सहे, उनकी परवाह न की।
शरीर के [illegible] से शारीरिक स्वस्थता को जीवन में मुख्य का
कारण [illegible] है, परन्तु वह भ्रम है। [illegible] से यह देखा [illegible]

है कि हर उन्नति के मार्ग में प्रायः दुर्बल व रुग्ण शरीर वाले अग्रसर हुए हैं। प्रायः शारीरिक अस्वस्था मस्तिष्क की उन्नति का कारण हुई है। *महात्मा तो शरीर की कदापि परवाह नहीं करते।* जो पुरुष यह कहते हैं जीवन का सुख केवल शरीर की स्वस्थता मे है, वे प्रकृति को पुरुष से अधिक महानता देते हैं तथा मन को शरीर के अधीन बनाते हैं। प्रबल मन वाले मनुष्य अपनी शारीरिक दुर्बलता की परवाह नहीं करते। वे उससे उदासीन रहते हैं और अपने कार्य मे उसी प्रकार अग्रसर रहते हैं जैसे स्वस्थ पुरुष। शारीरिक व्यवस्था की इस प्रकार उदासीनता केवल उनके मस्तिष्क को ही सबल नहीं बनाती, किन्तु शारीरिक अस्वस्थता को भी दूर करने मे सहायक होती है। यदि हम किसी कारण से अपने शरीर को सुदृढ़ नहीं रख सकते हैं तो अपने मन को तो अवश्य ही प्रबल रख सकेंगे। यह बात ध्यान देने की है और विशेष विचार की है कि प्रबल मानसिक शक्ति द्वारा मनुष्य की सम्पूर्ण अस्वस्थता दूर हो जाती है।

मानसिक विचार शारीरिक अस्वस्थता की अपेक्षा अधिक दुखदायी होता है। *जिस मनुष्य को मानसिक विकार होता है* अथवा जो मानसिक दृष्टि से दुर्बल है, वह शारीरिक [illegible] से, दुर्बल मनुष्य की अपेक्षा अधिक दुख व शोक

बहुत से वैद्य व [illegible] धान को

रोगी अपने मानसिक दुर्बलता के कारण रोग से मुक्त नहीं हो सकता है। प्रायः यह देखा गया है कि मानसिक दुर्बलता रोग का निवारण करने में बाधक हुई है।

अपने को रोगी समझना तथा अपने शरीर और भोजन की अधिक चिन्ता करना प्रत्येक प्राणी को, जो अपने को मनुष्य कहता है, त्याग देना चाहिए। जो मनुष्य यह समझता है कि अमुक भोजन जो साधारणतया सब को स्वास्थ्य देने वाला है, उसे अस्वस्थ करेगा, वह मनुष्य वास्तव में मानसिक रोग से ग्रस्त है। उसका उपचार यही है कि उसकी मानसिक दुर्बलता दूर की जाय। उसे किसी औषधि की आवश्यकता नहीं है। यह विचार करना कि अमुक भोजन ही, जो साधारणतया बहुतायत से प्राप्त नहीं है, अधिक स्वास्थ्यप्रद है, भूल है। वह निरामिष भोजी पुरुष ही जो यह कहता फिरता है कि आलू और मेथ के खाने से पेट में विकार उत्पन्न होता है, जो दालों में विष मिला हुआ समझता है और हरी-हरी तरकारियों में रोग की शंका करता है, अपने धर्म और सिद्धान्त के विरुद्ध आचरण करता है। साथ ही आमिष भोजियों के सामने वह अपने को एक दुराग्रही साबित करता है। यह विचार कि कल, जिस समय कि हम पीड़ित [illegible] बनावेंगे, और जीवन को रोग से ग्रस्त कर देंगे, [illegible] हमारे भोजन के नियमों का [illegible] करना

विचार करने से और इनके निवारण के कारण ढूँढ़ने में व्यर्थ ही दिन का नाश हो जाता है। जिस प्रकार मनुष्य दुख व दुर्भाग्य के बारे में शंका किया करता है उसी प्रकार सुख और स्वास्थ्य के विषय में भी आशान्वित हो सकता है, और ऐसा करने से अथवा आशावादी होने से हमको प्रसन्नता प्राप्त होगी और ऐसा हमारे सुख में वृद्धि होगी। एक कवि ने क्या ही अच्छे विचार प्रगट किये हैं:—

घृणा किसी से नहीं करें हम,
जीवन सुखमय करें अपार।
घृणाशील लोगों में रहकर,
रहें घृणा से रहित उदार।
रुग्ण जनों में रोग रहित हम,
जीवन सुखमय करें अपार।
रोगग्रस्त लोगों में हम हों,
सतत रोग से मुक्त उदार।
लोभी की तृष्णा से बचकर,
जीवन में सुख भरें अपार।
रहें लोभियों में फिर भी हों,
लोभ मुक्त, आनन्द उदार।

[illegible] जो स्वास्थ्य उत्पन्न करता है और सुख
[illegible] निर्माण है और मनुष्य

जीवन की प्रत्येक व्यवस्था को भली-भाँति सुलझाने वाले होते हैं। वे मनुष्य जीवन की समस्त स्थितियों को ठीक-ठीक संगठित करते हैं। वे सिद्धांत मनुष्य के आहार को नियमित बनाते हुए भी आहार सम्बन्धी व्यर्थ हानि पहुचानेवाली शङ्काओं से मुक्त करेंगे। जब सुदृढ़ नैतिक विचार पाखंडों और वासनाओं को दूर कर देंगे तब हमारे शरीर की व्यवस्था सुदृढ़ और स्वस्थ हो जायगी। जो मनुष्य चरित्रवान है वह शरीर से भी स्वस्थ है। दृढ़ संकल्प के बिना अव्यवस्थित होकर काम करना बड़ी भूल है। ऐसा करना तो एक प्रकार से संसार सागर में गोता लगाना है। यह तो वैसा ही हुआ जैसे एक नाविक पतवार के बिना अपनी नाव चलाता है और वायु के थपेड़ों में इधर-उधर घूमता-फिरता है। तुम्हारा ही दृढ़ संकल्प तुम्हें व्यर्थ की चिन्ताओं तथा व्यर्थ की शङ्काओं से मुक्त करेगा। दृढ़ संकल्प के अभाव में भ्रान्ति में पड़ा रहना होगा।

शारीरिक रोगों की व्यर्थ की चिन्ता करने की अपेक्षा शरीर से उदासीन ही रहना अच्छा है। यही नहीं; हमको और भी उन्नति करनी चाहिए, अर्थात् हमें अपने शरीर का स्वामी होना चाहिए। हम शरीर के स्वामी उसी समय हो सकेंगे जब हम अपनी इन्द्रियों और अपने मन को वश में रख सकेंगे। जिस समय हमारा आहार-विहार नियमित होगा कं

वाले को श्रीमान् बनाया है। वस्तुतः दरिद्रता क्या है। निर्धनता नहीं; दरिद्रता है चरित्र की कमी जैसे मादक पदार्थों का सेवन, गाली-गलौज करना, बेइमानी, चोरी, जुआ में लिप्त रहना पाप कर्म करना आदि। मैं तो यह कहूँगा कि मनुष्य के लिए क्षुधा से अथवा प्यास से व्याकुल होकर प्राण दे देना अच्छा है किन्तु पापवृत्ति से धन एकत्र करना अच्छा नहीं है। हमारे धर्म के आचार्यों ने ही नहीं, ईसा, बुद्ध व मुहम्मद ने भी धन के मद की बुराई की है और सरलता को प्रिय वधू की भाँति अपनाने का उपदेश दिया है। अब यह प्रश्न उठता है कि दोष निर्धनता में है अथवा पापवृत्ति में? उत्तर यह है कि दोष पापवृत्ति में है। निर्धनता में बहुधा पापवृत्ति के कारण आ जाती है। पापवृत्ति को हटाओ, निर्धनता तुम्हारा कुछ नहीं कर सकती। निर्धनता का डर पापवृत्ति के हटते ही चला जायगा। कन्फ्यूशियस, एक पाश्चात्य महात्मा, अपने निर्धन यनहुई नामक शिष्य का मान उन अमीर व धनाढ्य शिष्यों से अधिक करता था जो महलों में रहते थे और उसे बड़ी-बड़ी भेंटें लाया करते थे। वह यनहुई था, जो पृथ्वी छोर पर एक गढे में रहता था तथा चावल व जल खाकर जीवन निर्वाह करता था, अधिक सम्मान इस कारण करता था कि उसने अपनी परिस्थिति की कोई शिकायत न की, वह सदैव प्रसन्नता लिये हुआ रहता था, इधर अमीर

सरदार लोग परस्पर कलह डाह से सदा पीड़ित रहते थे और भाग्य को कोसा करते थे। निर्धनता उच्च चरित्र वाले को दुःख नहीं दे सकती; वह तो महान् चरित्र वाले में सोने में सुहागे की भाँति आन लाती है, उसके गुणों को प्रकट करती है और उसकी उदारता व सज्जनता को प्रकाशित करती है।

प्रायः देखा गया है कि सुधारक लोग निर्धनता को पाप का कारण बताते हैं। किन्तु वे ही सुधारक लोग धनी पुरुष के दुराचारों का उल्लेख करते हैं व शंख-ध्वनि द्वारा अमीरों के पापों को प्रकट करते हैं तथा उनके पापों का कारण धन को बताते हैं। अब यदि कारण में पाप है तो, कर्म में पाप होगा। यदि धन में पाप है तो धनी पुरुष पापी और निर्धन व्यक्ति नीच होगा। परन्तु वास्तव में पापी निर्धन हो अथवा धनवान, वह हर जगह पाप करेगा, वैसे ही पुण्यात्मा सदैव पुण्य करेगा। पाप पुण्य का सम्बन्ध मन से है, धन से नहीं। अपने आपसे असन्तोष गरीबी नहीं है। बहुत से ऐसे पुरुष देखे गये हैं जिनकी आय (आमदनी) सहस्रों रुपए तक है और जिन पर गृहस्थी का भार भी अधिक नहीं है, किन्तु फिर भी वे अपने को गरीब समझते हैं। वे अपने दुखों को गरीबी, अर्थात् धनाभाव से उत्पन्न बताते हैं, परन्तु वे बड़ी भूल करते हैं। वास्तव में उनकी गरीबी अपना [illegible]
धन की अधिक इच्छा ही है। उनको दुःख [illegible]

अपने पर का ही नियंत्रण करना, अपने आवेगों को ठीक करना और क्रमशः अपने मुहल्ले, नगर, देश आदि को भी सुधारने की ओर ध्यान देना। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपना आपका सुधार करे तब वह शनैः शनैः दूसरे का सुधार कर सकता है। हमारे देश में बहुत से नेता लोग सबसे अधिक आलसी, गैर व स्वार्थी हैं, और इसी कारण यह देश उन्नति नहीं कर सका। यदि उन्होंने तथा अन्य धर्मध्वजियों ने किंचित भी धर्म, नीति तथा अपने ही सुन्दर व्याख्यानों पर आचरण किया होता तो यह देश कभी का सुधर गया होता। भारतवर्ष में सदाचार व चरित्र की सबसे अधिक न्यूनता उसके अधिकांश नेतागणों में है। बहुत से मनुष्य निर्धन रहना पसन्द करते हैं, इसलिए नहीं कि वे आलसी हैं किन्तु इस कारण कि वे अपना समय देश सेवा में, अस्पतालों में तथा गरीब-दुखियों की सहायता में लगाते हैं। अब ऐसे ही पुरुष देश के सच्चे सुधारक हैं। आधुनिक समय मे महात्मा गाँधी व मालवीय जी इत्यादि ने अकिंचन रहकर अपने चरित्र-बल से देश का व समाज का उपकार किया है और वे लोगों के पथ-प्रदर्शक हैं। यह बात पुनः पुनः ध्यान देने की है कि मनुष्य ठीक-ठीक कर्तव्य-पालन द्वारा व अपना सुधार करके पूर्णता व इच्छित फल की प्राप्ति कर सकता है।

कर्तव्य-पालन से प्रेम करके मनुष्य निर्धनता तथा दरिद्रता को

हीं नहीं दूर करता, किन्तु उन्नति के निश्चित् मार्ग को भी प्राप्त
करता है। अपने कर्तव्य का पालन करो, देखो उन्नति तथा
आनन्द व शांति की प्राप्ति होगी, इसी से अभाव, पूर्णता
बिना स्वयं प्राप्त हो जायगी। कर्तव्यपालन में उत्साह
एकाग्रवृत्ति, साहस, दृढ़संकल्प व आत्मविश्वास जो उन्नति
की प्रधान कुंजी है, सब सम्मिलित हैं।

एक उन्नतिशील पुरुष से एक समय पूछा गया कि तुम्हारी
इस सफलता का क्या कारण है, तो उसने उत्तर दिया कि
प्रातःकाल छः बजे उठना और अपने कर्तव्य पर ध्यान देना।
धन, गौरव और प्रभाव उस मनुष्य को प्राप्त होते हैं जो
अपना कार्य ठीक-ठीक सम्पादन करता है तथा दूसरे के कार्य में
बाधक नहीं होता।

अब यह कहा जायगा कि अधिकांश मनुष्यों को—उदाहरण के
रूप मिल के मजदूरों को ले लीजिये—कोई अन्य कार्य करने के
लिए कोई अवकाश या सुविधा नहीं है। यह कथन भ्रांतिमय तथा
गलत है। हर एक को अवकाश व सुविधा है और समय है।
जो मिलों में काम करते हैं और जो अपनी गरीबी से असंतुष्ट रहते
हैं, वे वहीं कार्य करते हैं, अधिक परिश्रम कर सकते हैं, अपना
कार्य अधिक ईमानदारी व वफादारी से कर सकते हैं, अपने मकान
[illegible] पारेश कर सकते हैं और अपने [illegible]

अवकाश के समय में अपने को शिक्षा द्वारा उन्नतिशील बना सकते हैं। गरीब या अमीर सबका शत्रु दुर्व्यसन तथा बुरी आदतें हैं। जो युवक अपनी उन्नति चाहता है उसे तमाखू, शराब, सिनेमा, नृत्यशाला और वीर्यनाश से बचना चाहिए। भारत के श्रमजीवियों में जुए की लत पड़ी हुई है, और अब सिनेमा व वेश्यावृत्ति की अधिकता पाई जाती है। क्या ही अच्छा होता यदि वे अपना समय भगवत भजन, विद्याभ्यास तथा आत्मोन्नति में लगाते। अन्य देशों में तथा भारतवर्ष में भी देखा गया है कि महान् से महान् उन्नतिशील व प्रभाव वाले मनुष्य ने दरिद्र वर्ग ही में से उन्नति की है, जिसका इतिहास साक्षी है। यह नियम है कि जितना ही असंतोष हमको अपनी निर्धनता से होगा उतना ही परिश्रम हम अपनी उन्नति के लिए करेंगे तथा निर्धनता, समय की न्यूनता, परवशता इत्यादि कोई भी हमारे मार्ग में बाधक न होंगे। ये ही विघ्न साधन का रूप धारण कर लेंगे।

निर्धनता से प्रत्येक मनुष्य को हानि नहीं होती है; इससे हानि उसी पुरुष को होती है जो धन का लोलुप होता है। उसी प्रकार, धन से भी प्रत्येक की हानि नहीं होती; धन से हानि चरित्रहीन व दाचारहीन पुरुष ही की होती है। टालस्टाय को धन से बड़ा कष्ट अनुभव होता था; उसे धन की व्यवस्थाओं से घोर अशांति मिलती

थी, उसके लिए धन पाप था, वह निर्धनता की उतनी ही इच्छा करता था जितना धन के लोलुप पुरुष धन की करते हैं। वासना एक महान पाप है, वह उस मनुष्य का तो पतन कर ही देती है जो वासना-युक्त होता है, साथ ही उस समाज को भी दूषित कर देती है जिसका वह वासनामय पुरुष अनुयायी है। किसी मनुष्य की निर्धनता के विषय मे ज्ञान प्राप्त करके हम उसके चरित्र के ज्ञान मे प्रवेश करते हैं और उसके मन के भीतर पहुँचते हैं। जिस समय हमारे सुधारक वासनाओं और पापों के क्षय करने के निमित्त उतना ही परिश्रम करते हैं जितना न्यून वेतन को बढाने के लिए, तो हमको समझना चाहिये कि हम उन्नति की ओर जा रहे हैं, परन्तु यदि केवल वेतन बढाने की घोषणा है और पाप-वृत्ति और वासना के क्षय में उत्साह नहीं दिखाया जाता तो हमें समझना चाहिए कि हम अवनति के गड्ढे में चले जायँगे। यदि धन की प्राप्ति मे चरित्र में दोष आता है तो उसकी अप्राप्ति ही एक ईश्वरी कृपा समझनी चाहिए। हमारा तो यह विश्वास है कि यदि मन से धन लोलुपता व स्वार्थपरता दूर हो जाय तथा मद्यपान गन्दगी, आलस्य दूर कर दिये जायँ तो निर्धनता ससार से दूर हो जाय और प्रत्येक मनुष्य भलीभाति अपने कार्यों को हुआ सुख और शान्ति की ओर अग्रसर हो तथा

ष्य पर आरोहण किया। मानसिक शान्ति के कारण यह भेद-भाव को तथा दुःखमय विपरीतता को व विरुद्ध भावों को मर्यादित करता है और संसार में शान्ति स्थापित करता है। इस तरह यह उन वाग्मियताओं व देश-भक्तों का सहचारी होता है, जिन्होंने संसार से मूर्खता, अन्धकार व यमयातना को भगा दिया है तथा जो सत्य मार्ग के प्रदर्शक हुए हैं।

विजय (आत्मसमर्पण नहीं)

जिस मनुष्य ने अपनी इन्द्रियों को वश में करना आरंभ कर दिया है अब वह कोई पाप या दूषित कर्म नहीं कर सकता, वह सदैव पुण्य करेगा तथा सत्कर्म में अग्रसर होगा। पाप के आधीन होना सबसे निकृष्ट दुर्बलता है। पुण्य की आधीनता महान् शक्ति है। प्रत्येक मनुष्य को यह विचार करना चाहिए कि यदि मैं पाप के आश्रित होता हूं, यदि मैं मूर्खता व दुःख की आधीनता स्वीकार करता हूं तो मैं पराजय स्वीकार करता हूं; यह जीवन दुःखमय है और मुझे आत्महत्या कर लेना चाहिए। इस प्रकार की आत्म-हत्या धर्म के नितान्त प्रतिकूल है। यह पुण्य के विरुद्ध है और संसार में असफलता का साम्राज्य स्थापित करता है। इस प्रकार की परवशता तो स्वार्थ व दुःखमय जीवन को प्रकट करने वाली है। इस प्रकार के जीवन में वासनाओं के रोकने की शक्ति नहीं तथा यह जीवन उस शान्ति व सुख से रहित है जो एक चरित्रवान का होना चाहिए।

मनुष्य-जीवन दुःख के निमित्त तथा पराधीनता के निमित्त नहीं है। यह अन्तिम स्वतन्त्रता तथा प्रसन्नता स्थापित करने के लिये है। सृष्टि के सम्पूर्ण धार्मिक नियम सुख के

से अथवा अन्य किसी बाह्य कारण से प्राप्त नहीं हो सकता। बाह्य कारण केवल उपादान कारण हो सकते हैं। परन्तु निमित्त कारण नहीं हो सकते। निमित्त कारण तो हमारी अंतर्गत प्रबल मनोवृत्ति ही है। यदि हमारा मन निर्मल और पवित्र है तो हम पापवृत्ति को किसी प्रकार ग्रहण नहीं कर सकते। इसी प्रकार आत्म-संयम द्वारा तथा अंतरात्मा की पवित्रता द्वारा हम पाप का नाश कर सकेंगे और पुण्य का साम्राज्य स्थापित कर सकेंगे। प्रत्येक धार्मिक आचार्यों ने इसी आत्म संयमता व मनोनिग्रह का उपदेश प्रत्येक युग में दिया है। यह आत्म संयमता व मनोनिग्रह किसी एक धर्म की संपत्ति नहीं। यह एक सार्वभौम धर्म है जिसका युग युगान्तरों से तथा देश-देशान्तरों से प्रत्येक धार्मिक आचार्यों तथा तत्ववेत्ताओं ने घोर शंखध्वनि द्वारा प्रचार किया है। यही एक नितांत ध्रुव-सत्य है। इस ध्रुव सत्यता को भेदवादियों ने अपनी २ ओर खींचकर अंध परम्परा व कट्टरता का रूप प्रदान कर दिया है। वास्तव में हमें न किसी राक्षस पर, न देव पर, न दानव पर, न किसी भूत, न पिशाच पर, न किसी शैतान और न किसी काफिर पर विजय पाना है। हमको तो विजय अपनी इन्द्रियों पर, अपनी विषय लंलुपता पर तथा स्वार्थपरता पर पाना है, हमें अपनी इच्छाओं पर, अपने कुविचारों पर और अपनी मूर्खता पर तथा अपनी जड़ता पर और अपनी उद्दंडता पर साम्राज्य स्थापित

...है। हमें तो पुण्य का साम्राज्य और स्वराज्य चाहिए। जिस पुण्य की परतन्त्रता स्वीकार है पर पाप की स्वतन्त्रता को दूर से नमस्कार है। जिस समय मनुष्य अपनी वासनाओं का नाश करेगा, जिस समय वह विषयों से विरक्त होगा, जिस समय उसका मन आन्तरिक पवित्रता से पवित्र होगा, उस समय वह उन्नति के शिखर पर आरोहण करेगा। मनुष्य के जीवन के इतिहास में वह दिवस स्वर्ण अक्षरों से लिखा जायगा जिसमें वह अपनी अंतर्वासनाओं पर विजय पावेगा और वह अंतरात्मा से पुण्यवान् बनेगा। उस समय संसार से पाप नष्ट हो जायगा और मनुष्य इसी जगत में, इसी संसार में तथा इसी जीवन में स्वर्ग का अनुभव करेगा। उस समय पाप व दुख समूल नष्ट हो जायगा और संसार में अखण्ड व अक्षय व चिरस्थायी शान्ति स्थापित होगी।

मैरो को यवन राज्य में पददलित होते हुए भी हमारा अनु-
रुक्त न गया । बल्कि हम लोगों ने यही वैमनस्य यवनों को
भी सिखाया अथवा उन्होंने उसे इस भारत में सीखा । परिणाम
से यवन राज्य का लय हो गया । हिन्दू मुस्लिम विरोध ने एक
तीसरी शक्ति का साम्राज्य स्थापित किया । यह शक्ति अंग्रेज-
राज है जिसमें कि हम सब हिन्दू मुसलमान एक शासन सूत्र के
अन्तर्गत हैं । मैं वृटिश न्याय में विश्वास करता हूँ परन्तु यह मैं
अवश्य कहूँगा कि अब भारतवर्ष में प्रश्न तीन जातियों का है,
हिन्दू मुस्लिम व अंग्रेज । यदि यह तीनों जातियाँ स्वार्थपरता को
त्याग कर परस्पर प्रेम सूत्र में न बिन्धेगी तो चिरस्थायी व अखण्ड
शांति न प्राप्त होगी । स्वार्थत्याग, इन्द्रियनिग्रह, वासनात्याग यही
हम सबकी स्वतन्त्रता है । परस्पर प्रेम ही हमारी शक्ति व सुन्दरता
है, परन्तु यह उस समय तक सम्भव नहीं जब तक हमारे विचार
शुद्ध न हों, जब तक हम दृढ़-सकल्प द्वारा इस कुविचार को हटा
न दें कि यह "असंभव" है । जिस समय यह कुविचार हट जायगा
यह भारतवर्ष नन्दन वन हो जायगा और स्वर्ग वेहिश्त तथा देवन
यहीं सुलभ होगा । यह बा ' ध्यान देने की है कि परस्पर प्रेम एक
मानसिक स्थिति है जो विचार से सम्बन्ध रखती है । हमारा मन
न में डाले है और हमारा मन ही हमें स्वतन्त्र करेगा ।

एलेन सीरीज की कुछ उत्कृष्ट पुस्तकें

१—विचारों का प्रभाव

यह पुस्तक जेम्स ऐलन लिखित As You Thinketh का अनुवाद है। उसमें बताया है कि मनुष्य के विचारों में कितनी महान् शक्ति है; उसका कितना प्रभाव हमारे कार्यों पर पड़ता है, एवं उसमें कितना चमत्कार है। मूल्य ॥)

२—मनुष्य ही अपने भाग्य का निर्माता है

यह पुस्तक जेम्स एलेन के Man is the Master of His Mind Body and Circumstances का अनुवाद है। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार हम अपने विचारों और अध्यवसाय से अपने भाग्य को बना सकते हैं। मूल्य ।=)

३—गौरवशाली जीवन

यह जेम्स एलेन लिखित Life Triumphant का अनुवाद है। इसमें बताया गया है कि मनुष्य के विचारों में कितनी महान् शक्ति है; उसका कितना प्रभाव हमारे कार्यों पर पड़ता है, एवं उसमें कितना चमत्कार है। मूल्य ॥)

४—नर से नारायण

यदि हम संसार से प्रेम करें, हमेशा सचाई के मार्ग पर चलें और मन तथा हृदय को अपने वश में रखें तो यह मानवी दुख दूर किया जा सकता है। यह पुस्तक जेम्स एलेन लिखित From Poverty to Power का अनुवाद है। मूल्य १।) मात्र।

९—विजय के आठ स्तम्भ

संसार में अनेक पुरुषों को सफलता नहीं मिलती। उनको मालूम नहीं कि सफलता किस प्रकार प्राप्त करनी चाहिये। इस पुस्तक में जेम्स एलेन ने बड़ी सरलता से आठ बातों का वर्णन किया है जिनको प्राप्त कर लेने से मनुष्य को सफलता मिलती है। प्रत्येक व्यक्ति के पास इस पुस्तक की एक प्रति होनी चाहिये। यह पुस्तक जेम्स एलेन लिखित (Eight Pillars of Success) का अनुवाद है। अनुवादक प्रिंसिपल केदारनाथ गुप्त, एम० ए०। मूल्य १)

१०—मौन की वाटिका में

यह पुस्तक श्रीमती लिली एलेन लिखित In the Garden of Silence का स्वच्छन्द अनुवाद है। पुस्तक पढ़ने से अपूर्व शान्ति का अनुभव होता है। मूल्य ।।) मात्र।

११—मनुष्य ही मन, शरीर और परिस्थितियों का राजा है

यह जेम्स एलेन लिखित Man : King of Mind, Body and Circumstances का रूपान्तर है। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार मनुष्य अपने मन और विचारों को अधीन करके अपना जीवन सुखी बना सकता है। मू० ५० न० पै०

ईश्वर के सम्पर्क में

क्या आपको संसार में सुख नहीं मिल रहा है? क्या आपको जीवन में अशान्ति रहती है? क्या आप अपने जीवन से निराश हो रहे हैं? क्या आपका स्वास्थ्य खराब है?

यदि ऐसी बात है तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। हिन्दी संसार मे यह अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। इसे पढ़कर आप पूर्ण सुखी और स्वस्थ होंगे और आपको जीवन का आनन्द मिलेगा। प्रत्येक घर में इसकी एक प्रति होनी चाहिये। यह पुस्तक श्री रैल्फ वाल्डो ट्राइन की *In Tune with Infinite* का स्वच्छन्द अनुवाद है।

अनुवादक—प्रिंसपल केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

मूल्य ॥)